न्याय-वैशेषिक दर्शन में धर्म का स्वरूप : एक अवलोकन

ममता वर्मा [1], डॉ० विजय कुमार [2]
[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, महिला शिल्प कला भवन कॉलेज मुजफ्फरपुर, बिहार
[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, लंगट सिंह कॉलेज मुज़फ्फरपुर, बिहार

शोध सारांश:

न्याय- वैशेषिक दर्शन भारतीय दर्शन के आस्तिक दर्शनों में स्थान रखता है। इसमें ईश्वर की सत्ता पर विशेष जोर दिया गया है। ईश्वर को धार्मिक भावना की तुष्टि के लिए नहीं स्वीकार किया गया है, बल्कि व्यक्ति के उनके कर्मों के अनुसार फल प्रदान कर्ता के रूप में स्वीकारा गया है। ईश्वर को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारक के रूप में स्वीकारा गया है। अदृष्ट जो हमारे कर्मों के फलों का संचय करता है, उसके संचालक के रूप में ईश्वर है। यह ईश्वर ही व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करने में सहयोग करता है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करना अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति धर्म की परिधि का विषय है। न्याय-वैशेषिक दर्शन में आत्मा का वास्तविक स्वरूप अचेतन है। इसमें चेतना का संचार होता है जब आत्मा का मन से, मन का इन्द्रियों से और इन्द्रियों का बाह्य वस्तुओं या विषयों से संपर्क हो। श्रवण, मनन और निधिध्यासन द्वारा मोक्ष के राह पर आगे बढ़ा जाता है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा अचेतन हो जाती है। अचेतन होने के कारण सुख, दुःख या आनंद किसी भी भाव का अभाव ही होता है। सामान्यतः अन्य दर्शनों में मोक्ष की अवस्था को आनंदमय बताया गया है लेकिन न्याय- वैशेषिक मोक्ष की अवस्था में ऐसे किसी भी भाव के अभाव को मानते है। इन दर्शनों में धर्म का तात्पर्य ईश्वर के सहयोग से मोक्ष प्राप्त करना है। सांप्रदायिक कर्मकांड का न्याय-वैशेषिक दर्शन के धार्मिक स्वरूप में कोई स्थान नहीं है।

मुख्य शब्द : आत्मा, मोक्ष, अचेतन, ईश्वर, अदृष्ट, ईश्वर इच्छा।

विषय प्रवेश

न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम है। अन्य भारतीय दर्शनों की तरह न्याय में भी धर्म का लक्ष्य 'आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करना है' अर्थात् आत्मा को शरीर, इंद्रियों तथा सांसारिक विषयों के बंधन से मुक्त करना है। सामान्यत: धर्म का अर्थ व्यक्ति के अपने कर्म और कर्तव्य से लिया जाता है। इस दर्शन में भी कर्म को महत्व दिया गया है लेकिन वैयक्तिक उत्थान के संदर्भ में, उससे समाज के अन्य व्यक्ति से कोई विशेष संबंध नहीं होती है। वैयक्तिक मोक्ष को इस दर्शन के केंद्र में रखा गया है।

आत्मा का स्वरूप

"न्याय दर्शन के अनुसार आत्मा एक द्रव्य है जो शरीर, इंद्रिय, मन एवं बुद्धि से भिन्न है"।[1] शरीर भौतिक तत्वों के समिश्रण से बना। मन को अणु रूप माना गया है, वह सुक्ष्म, नित्य तथा अविभाज्य है। सुख-दुःख आदि मानसिक गुणों के अनुभव के लिए मन ही उत्तरदायी है। मन को 'आंतरिक इंद्रिय' कहा जाता है। लेकिन न्याय के आत्मा का विचार अन्य दर्शनों से थोड़ा भिन्न है। अन्य दर्शनों में आत्मा को स्वचेतन माना गया है। "न्याय दर्शन आत्मा को स्वरूपतः अचेतन मानता है"।[2] आत्मा में चेतना का संचार विशेष परिस्थिति में होता है। जब आत्मा का इंद्रियों के

द्वारा वस्तुओं से संबंध होता है तो उसमें चेतना का संचार होता है। इस प्रकार "न्याय दर्शन चैतन्य या ज्ञान को आत्मा का आगंतुक गुण मानता है"।[3] संबंध होने पर ही आत्मा में चेतना का संचार होता है तभी आत्मा को ज्ञान भी होता है। जब आत्मा मुक्त हो जाती है तो चेतना भी समाप्त हो जाता है और ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। आत्मा विभु, अमर तथा नित्य है। आत्मा ही सांसारिक विषयों में आसक्त या अनासक्त होता रहता है। यही विषयों से राग-द्वेष करता है। मिथ्या ज्ञान, राग-द्वेष तथा मोह से प्रेरित आत्मा अच्छा बुरा कर्म करता है। उन्हीं के कारण आत्मा को पापमय या दुःखग्रस्त होना पड़ता है। तत्वज्ञान के द्वारा जब सभी दुखों का अंत हो जाता है तो मुक्ति प्राप्त होती है। "नैयायिक के अनुसार मोक्ष दुःख के पूर्ण निरोध की अवस्था है। वे इसे 'अपवर्ग' कहते हैं"।[4] अन्य दर्शनों में यह अवस्था आनंद की अवस्था होती है लेकिन न्याय दर्शन ऐसा नहीं मानता है। नैयायिक का मानना है कि मुक्त होने पर आत्मा तो चैतन्यहीन ही हो जाता है। तब सुख-दुःख किसी की अनुभूति नहीं रह सकती है। ये आत्मा के अस्तित्व और उसके स्वरूप के बारे बात हुई। आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप में आना भी धर्म का ही भाग है क्योंकि इसी अवस्था में वह हर तरह के बंधनों से मुक्त होता है।

आत्मा के स्वरूप की विशद चर्चा अनिवार्य है। आत्मा के संबंध में न्याय- वैशेषिक का मत वस्तुवादी है। उनके अनुसार आत्मा एक ऐसा द्रव्य है जिसमें बुद्धि या ज्ञान, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि गुण भी वर्तमान रहता है। ये जड़ जगत के गुण नहीं है क्योंकि जड़ द्रव्यों के गुणों की तरह ये बाह्य इंद्रियों से बोधगम्य नहीं हो सकते है। अतः ये द्रव्य के गुण है लेकिन जड़ द्रव्यों से भिन्न है। भिन्न- भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न आत्मा है क्योंकि इसका अनुभव एक दूसरे से पृथक है। आत्मा की न उत्पत्ति होता है न नाश होता है अतः ये नित्य है। यह विभु है, क्योंकि यह काल और दिक् दोनों दृष्टियों से बिलकुल असीम है। आत्मा शरीर, इंद्रिय, मन एवं विज्ञान प्रवाह से भिन्न है। शरीर आत्मा नहीं है क्योंकि इसको अपनी चेतना या ज्ञान नहीं है। बाह्य इंद्रिय को भी आत्मा नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि कल्पना, स्मृति, विचार आदि मानसिक क्रियाएं इनके कार्य नहीं है। मन को भी आत्मा नहीं माना जा सकता है। मन को अणु रूप और अप्रत्यक्ष माना है। नैयायिक ज्ञान या चैतन्य को आत्मा का एक गुण मानते है लेकिन इसको आत्मा का स्वरूप नहीं मानते है। चेतना को आगंतुक मानते है क्योंकि इसमें चेतना का संचार तब होता है "जब आत्मा का मन से, मन का इंद्रियों से, तथा इंद्रियों का बाह्य वस्तुओं के साथ संपर्क होता है"।[5] अगर ये संपर्क स्थापित नहीं होएगा तो चेतना या ज्ञान का उदय नहीं हो सकेगा। अतः आत्मा जब शरीर मुक्त होता है तब उसमें ज्ञान का अभाव रहता है। न्याय दर्शन के अनुसार "आत्मा ज्ञाता, कर्त्ता एवं भोक्ता है"।[6] न्याय दर्शन के अनुसार आत्मा एक अभौतिक द्रव्य है जिसमें छः गुण हैं- इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, और ज्ञान। न्याय दर्शन में "आत्मा के आठ अन्य गुण भी गिनाए गये हैं संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, भावना, धर्म एवं अधर्म"।[7]

ईश्वर का स्वरूप

न्याय दर्शन में ईश्वर के लिए भी विशेष स्थान है। ईश्वर सिद्धि के लिए उन्होंने बहुत से तर्क दिए है। इस दर्शन में "ईश्वर जगत का आदिस्रष्टा, पालक तथा संहारक है"।[8] ईश्वर ने विश्व का निर्माण शून्य से नहीं किया बल्कि परमाणु, दिक्, काल, आकाश, मन, तथा आत्मा आदि उपादानों से किया है। जीव अपने-अपने पुण्यमय और पापमय कर्मों के अनुसार सुख-दुःख का उपभोग कर सकें, इसके लिए संसार की सृष्टि हुई है। इस संसार का निर्माता अवश्य कोई चेतन आत्मा होगा, जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा संसार की नैतिक व्यवस्था का संरक्षक है ।

न्याय दर्शन के न्याय सूत्र में 'ईश्वर' का संक्षिप्त परंतु स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। गौतम ने यह प्रतिपादित किया कि जीवों के कर्म के अनुसार ईश्वर जगत की सृष्टि और जीवों के सुख-दुःख का विधान करते है। नव्य नैयायिक भी ईश्वर का पूर्ण विचार करते है और इसे मोक्ष के लिए आवश्यक मानते है। वे कहते है कि ईश्वर की दया से ही जीवात्मा वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है और तब मोक्ष प्राप्त कर सकता है। तब प्रश्न होता है ईश्वर कौन है? इसके अस्तित्व के लिए क्या-क्या प्रमाण है ? ईश्वर का संक्षिप्त परिचय पहले भी किया जा चुका है कि वह आदि सृष्टि करने वाला, इस संसार का पालक और संहारक भी है। ईश्वर एक, अनंत और नित्य है। दिक्, काल, मन तथा आत्मा इसे सीमित नहीं कर सकते। यद्यपि ईश्वर को मनुष्य के पाप और पुण्य के अनुसार चलना पड़ता है, फिर भी वह सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है क्योंकि उसे सभी वस्तुओं और घटनाओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त है। उसका ज्ञान नित्य है। इस नित्य ज्ञान के द्वारा वह सभी विषयों का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। न्याय दर्शन में ईश्वर को इस संसार का 'धर्म व्यस्थापक' भी माना गया है। "ईश्वर के छः गुण है जिन्हें 'षडैश्वर्य' कहते है। ये गुण उसमें पूर्ण रूप से वर्तमान है। इसके अनुसार ईश्वर में अखंड ऐश्वर्य (आधिपति, ज्ञान, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य) है" ।[9] ईश्वर संसार का निमित्त कारण है किंतु जीवात्माओं के कर्मों का वह प्रायोजक कारण है। कोई भी जीव अपने कार्यों को करने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है। वह केवल अपेक्षाकृत स्वतंत्र है। अर्थात् वह परमात्मा की प्रेरणा के अनुसार ही कार्य करता है। ईश्वर सभी जीवों को अपने- अपने अदृष्ट (अतीत संस्कार) के अनुसार कर्म करने को तथा उसके अनुसार फल पाने को प्रेरित करता है। "जीवों के पूर्व कर्म के अनुसार ही ईश्वर सृष्टि करता है। इसके दो आधार हैं। पहला आधार तो जीवों का पूर्वकृत पाप पुण्य रूप अदृष्ट है और दूसरा आधार ईश्वर की इच्छा है। अतः अदृष्ट का नियामक ईश्वर है" ।[10] मनुष्य अपने कर्मों का कर्ता तो है, लेकिन वह ईश्वर के द्वारा अपने अदृष्ट के अनुसार प्रेरित या प्रायोजित होकर कर्म करता है। अतः ईश्वर को जीवों के कर्मों का प्रयोजनकर्ता कहते है। इस प्रकार ईश्वर संसार के मनुष्यों एवं उस से इतर जीवों का धर्म व्यस्थापक है, उनका कर्म फल-दाता और सुख-दुःख का निर्णायक है ।

ईश्वर सिद्धि के संबंध में कुछ तर्क

1. **कारण मूलक युक्ति**- संसार की सभी वस्तुएं कई उपादान कारणों के संयोग से बनी हुई है। अतः इनका कोई-न -कोई बुद्धिमान कर्ता अवश्य होगा, क्योंकि बिना किसी बुद्धिमान कर्ता के संचालन से इन वस्तुओं के उपादान कारणों का (अर्थात् परमाणुओं) साधन के बारे में अपरोक्ष ज्ञान होना आवश्यक है और उसमें लक्ष्य पूर्ति की इच्छा और साथ- साथ प्रयत्न शक्ति होना भी आवश्यक है। जो सर्वज्ञ होगा वही परमाणु जैसी सूक्ष्म सत्ताओं का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। नैयायिक का पाश्चात्य ईश्वरवादियों से थोड़ा भेद है। पाश्चात्य ईश्वरवादियों के अनुसार ईश्वर जगत के उपादानों का केवल संयोजक नहीं है बल्कि उन उपादानों का सृष्टि कर्ता भी है। किंतु न्याय में ईश्वर केवल संयोजक ही है, उपादानों का सृष्टि कर्ता नहीं। लेकिन ईश्वर सर्वदा ही संसार से संबंध रहता है क्योंकि वह संसार का केवल सृष्टि ही नहीं वरन उसका रक्षक और संहारक भी है।
2. **फल प्रदारक ईश्वर** हमें अच्छे कर्मों के लिए पुरस्कृत करता और बुरे कर्मों के लिए दंड देता है। कर्म और फल के बीच कार्य-कारण संबंध स्थापित करने वाला ईश्वर ही है। अच्छे और बुरे कर्मों से उत्पन्न पुण्यों या पापों का भंडार 'अदृष्ट' कहलाता है। अदृष्ट पूर्व कर्मों से उत्पन्न पाप और पुण्य का भंडार करके वर्तमान सुख-दुखों को उत्पन्न करता है। लेकिन प्रश्न होता है, जब वह अचेतन है तो इसे कैसे उपन्न कर सकता है ? अदृष्ट का संचालक भी नित्य, सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञ ईश्वर ही है।

3. **वेदों के प्रामाणिकता का कारक के रूप में ईश्वर** को स्वीकारा जाता है। वेदों का कर्ता एक ऐसा पुरुष है जो भूत, वर्तमान और भविष्य, मध्य परिणामी, विभु, अणु इंद्रियगम्य और अतीन्द्रिय सभी विषयों का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अन्य धर्म ग्रन्थों की तरह वेदों की अभिव्यक्ति भी ईश्वर के द्वारा ही हुई है ।
4. **ईश्वर के अस्तित्व का चौथा प्रमाण यह है कि श्रुति** इसके अस्तित्व की मानती है। जैसे विभिन्न उपनिषदों में उनके बारे में वर्णन मिलता है। श्वेताश्वर उपनिषद् में कहा गया है सभी विषयों में एक ही ईश्वर निहित है, वह सर्वव्यापी है, सभी विषयों का अंतरंतम आत्मा है, और सबों का व्यवस्थापक एवं संरक्षक है। "मैं ही विश्व का माता पिता हूं, मैं ही इसका प्रतिपोषक हूं और मैं ही इसका अपरिवर्तनशील स्वामी हूं, साक्षी हूं, निवास हूं, शरण हूं, आधार हूं, और उत्पत्ति एवं नाश का अपरिवर्तनशील कारण हूं" ।[11] ये आप्त वचन इस बात को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित करते है कि ईश्वर का अस्तित्व है।
5. **जगत में एक प्रयोजन दिखता है उसका कारण ईश्वर ही** है। कहा जाता है, ईश्वर ने जगत की सृष्टि किसी प्रयोजन के निमित्त की है। यहां प्रश्न भी उठता है कि ईश्वर को क्या प्रयोजन सिद्ध करने की जरूरत पड़ी ? ईश्वर ने तो खुद के किसी प्रयोजन के निमित्त ऐसा नहीं किया होगा क्योंकि वह तो पूर्ण है। किसी प्रकार की इच्छा करना, अपूर्णता को सूचित करता है। ईश्वर अपूर्ण नहीं है तो निश्चित ही किसी अन्य के प्रयोजन के निमित्त ईश्वर ने जगत की सृष्टि की है। ये भी कहा जाता है कि जो केवल दूसरे के लिए प्रयत्न करता है वह बुद्धिमान नहीं समझा जा सकता है। ये भी नहीं कहा जा सकता है कि ईश्वर ने करुणावश इस संसार की सृष्टि की है। ऐसी बात होती तो वह सभी को पूर्ण सुखी बना देता, किसी को दुःख से पीड़ित नहीं होने देता है।

इस तरह से तर्क करके ईश्वर को सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। उदयनाचार्य ने अपनी न्यायकुसुमंजलि में "ईश्वर सिद्धि के 9 युक्तियां दिए है" ।[12] करुणावश सृष्टि करने का यह मतलब नहीं होता है कि कोई दुखी ही न हो। जीवन का वास्तविक मतलब सुख-दुःख के समिश्रण में ही है। ये भी कहा जाता है कि ये संसार ईश्वर को परतंत्र नहीं करता न ही बाधक होता है बल्कि उचित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक ही होता है।

वही ईश्वर है, जिसने इस संसार को अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए नहीं बनाया है बल्कि अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए बनाया है। इसका यह तात्पर्य है कि मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता है। अतः वह अच्छा या बुरा दोनों कर्म कर सकता है तथा उसी के अनुसार सुख-दुःख का भागी होता है। किंतु परमात्मा की दया तथा उसके मार्ग दर्शन से मनुष्य अपने आत्मा तथा विश्व का तात्विक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और उसके बाद अपने दुखों से मुक्ति पा सकता है। इस प्रकार न्याय दर्शन का अंतिम उद्देश्य शुद्ध विचार या तार्किक आलोचना के नियमों का अन्वेषण करना नहीं है बल्कि विभिन्न प्रकार से कैसे नैतिक विचार की प्राप्ति हो और उस आधार पर इसका भी उद्देश्य धर्म को अर्थात् जितने भी धार्मिक या नैतिक नियम है उसको अपने जीवन में उतारने के बाद कैसे मोक्ष की प्राप्ति हो, यही इसका अंतिम उद्देश्य है अर्थात् जीवन के दुखों का कैसे नाश हो इसका उपाय ढूंढ निकालना ही इसका अंतिम अभिप्राय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्व ज्ञान प्राप्त करना अर्थात् यथार्थ ज्ञान के नियमों को जानना अत्यंत आवश्यक है। अन्य दर्शनों की तरह न्याय दर्शन भी जीवन की समस्यायों का भी समाधान करता है। किंतु विशेषतः इसका संबंध तर्क विज्ञान तथा प्रमाण विज्ञान से है। वात्स्यायन कहते है 'प्रमाणों के द्वारा किसी विषय की परीक्षा करना ही न्याय है'।

इस प्रकार हम देखते है कि न्याय दर्शन यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति का साधन बतलाते हुए धर्म की धारणा के मार्ग का अंतिम उद्देश्य का प्रतिपादन करता है जिसमें जीव-आत्माओं को मोक्ष पाने के लिए मार्ग प्रदर्शन किया गया है।

मोक्ष की अवधारणा

सम्पूर्ण भारतीय दर्शन का चरम उद्देश्य है 'मोक्ष की प्राप्ति'। न्याय दर्शन में भी धर्म के प्रत्येक धारणा के आधार पर तत्व ज्ञान का अनुसंधान इसलिए किया जाता है कि उसके द्वारा जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। मोक्ष का वर्णन विभिन्न दर्शनों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है। ऊपर 'आत्मा के स्वरूप' की चर्चा में भी मोक्ष की अवधारणा का कुछ स्पष्टीकरण किया जा चुका है। नैयायिक के अनुसार मोक्ष दुःख के पूर्ण निरोध की अवस्था है जिसे वे 'अपवर्ग' का नाम देते है। अपवर्ग का तात्पर्य है 'शरीर और इंद्रियों के बंधन से आत्मा को मुक्त करना'। इसमें दुःख का अंत सदा के लिए हो जाता है।

न्याय दर्शन में अपवर्ग या मोक्ष पाने के उपाय भी बताएं गए है। मोक्ष पाने के लिए सबसे पहले धर्म ग्रंथों के आत्म-विषयक उपदेशों का श्रवण करना चाहिए। तब मनन के द्वारा आत्म-विषयक ज्ञान को सुदृढ़ बनाना चाहिए और तब निदिध्यासन के द्वारा, बतलाए गए मार्ग के अनुसार आत्मा का निरंतर ध्यान करना चाहिए। इससे लाभ होता है कि मनुष्य आत्मा को शरीर से भिन्न समझने लगता है। तब उसके मिथ्या ज्ञान का कि 'मैं शरीर' और 'मन हूं' का अंत हो जाता है। तब वह वासनाओं और प्रवृतियों से परिचालित नहीं होता है। इस तरह जब मनुष्य वासनाओं और प्रवृतियों से मुक्त हो जाता है, तो उसके वर्तमान कर्मों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वह तब किसी कर्म को 'निष्काम भाव' से करता है। अपने संचित कर्मों का फल भोग लेने पर फिर वह जन्म ग्रहण के चक्र में नहीं पड़ता और इस तरह पुनर्जन्म का अंत हो जाने पर शरीर के बंधनों का और साथ-साथ दुखों का भी अंत हो जाता है। यही मोक्ष या अपवर्ग है।

वैशेषिक दर्शन में धर्म

वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म की व्याख्या के अंतर्गत यह माना जाता है यह संसार एक प्रकार का लीला स्थल है जो जीवों की उन्नति और मुक्ति के हेतु रचा गया है। भारतीय दर्शन का यही आध्यात्मिक दृष्टिकोण वैशेषिक में भी विद्यमान है। "वैशेषिक के अनुसार वेद ईश्वर वाक्य है। ईश्वर नित्य, सर्वज्ञ और पूर्ण हैं। ईश्वर अचेतन अदृष्ट के संचालक है। ईश्वर इस जगत के निमित्त कारण और परमाणु उपादान कारण है"।[13] सृष्टि और प्रलय का प्रतिपादन इस प्रकार करता है। संसार के सभी कार्य द्रव्य चार प्रकार के प्रमाणुओं पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बनते है, इसीलिए मत को 'परमाणुवाद' भी कहते है। परंतु परमाणुओं का संयोग और वियोग यूं ही नहीं हुआ करते है। वे कर्मफल के अनुसार प्रेरित होते है। इसके अलावे शेष पांच द्रव्यों आकाश, दिक्, काल, मन, और आत्मा के परमाणु नहीं होते इसीलिए कणाद के परमाणुवाद का स्वरूप पाश्चात्य परमाणुवाद से भिन्न है। 'पाश्चात्य परमाणुवाद' भौतिकवाद के सिद्धांत को लेकर चलता है। अनंत दिक् से असंख्य परमाणुओं के भिन्न-भिन्न दिशाओं में घुमने के कारण उनके आकस्मिक संयोग के फलस्वरूप यह संसार बनता और बदलता रहता है। परमाणुओं की गति को निर्धारित करने वाली कोई चेतनशक्ति नहीं है। जड़ परमाणु स्वत: एकसाथ मिल जाते है और फिर अलग हो जाते है। उसका नियामक कोई चेतन पदार्थ नहीं वरन प्राकृतिक नियम है। वैशेषिक का परमाणुवाद आध्यात्मिक सिद्धांत पर अवलंबित है। "जड़

परमाणुओं के साथ आत्मा तथा ईश्वर जैसी सत्ताओं तथा कर्मवाद के नैतिक नियम को स्वीकार करता है" ।[14] इसके अनुसार परमाणुओं की गति का सूत्रधार ईश्वर है जो जीवों के अदृष्ट के अनुसार कर्मफल का भोग कराने के लिए परमाणु की क्रियाओं को प्रवर्तित करता है। उसी की इच्छा से सृष्टि और प्रलय होते है।

शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार से युक्त जीवात्मा दिक्, काल और आकाश में अवस्थित कार्य-कारण की श्रृंखला में बंधे हुए है। जीवात्मा अपनी बुद्धि, ज्ञान और कर्म के अनुसार सुख और दुख का भोग करते है। पुण्य का फल सुख, दुःख और पाप का फल दुःख होता है। इस तरह जीव आत्माओं के सुख केवल प्राकृतिक नियमों के अधीन नहीं, बल्कि कर्मफल के नियमों पर भी आश्रित हैं। वैशेषिक के अनुसार सृष्टि और संहार के कर्ता 'महेश्वर' हैं। वे अखिल विश्व के स्वामी या शासक है। उन्हीं की इच्छा से संसार की सृष्टि होती है जिसमें सभी जीव अपने-अपने कर्म के अनुसार सुख- दुःख का भोग कर सकें। जब उनकी इच्छा होती है तो तब वे इस जाल को समेट लेते है। यह सृष्टि और लय का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है। इसीलिए किसी सृष्टि को प्रथम सृष्टि नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक सृष्टि के पूर्ण लय की अवस्था रहती है और प्रत्येक लय के पूर्व सृष्टि की। सृष्टि का अर्थ है पुरातन क्रम का ध्वंस कर नवीन का निर्माण करना। जीवों के कर्म को ध्यान में रखते हुए ईश्वर नव-सृष्टि की रचना करते हैं। जब वे सृष्टि रचना का संकल्प करते है तब जीव-आत्माओं के अदृष्ट के अनुसार उनके भोग साधन बनने लगते है और जीव आत्माओं को अदृष्ट उन्हें उस दिशा में प्रवृत्त करने लगते है। इन सबको संचालित करने का काम विश्व-आत्म करते है जो अनन्त ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य का भंडार है।

निष्कर्ष

सामान्यतः धर्म को कर्म से जोड़ कर देखा जाता है। लेकिन न्याय- वैशेषिक दर्शन में धर्म को उन कर्मों के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि श्रवण, मनन, निधिध्यासन जैसे साधनात्मक कर्मों के द्वारा मोक्ष जैसी परम उच्च स्थिति को प्राप्त करने के संदर्भ में माना जाता है। यहां धर्म का संबंध सामाजिक दायित्वों से नहीं व्यक्तिगत उत्थान से है। व्यक्ति अपने कर्मों के लिए खुद जिम्मेदार होते है और उसी के अनुरूप फल का भोग करते है। कर्म सिद्धांत के इस विचार को भारतीय दर्शन के सभी संप्रदायों में स्वीकार किया जाता है। आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् 'अचेतन की अवस्था' को प्राप्त कराना ही मोक्ष प्राप्त करना है। इस परम उच्च स्थिति को प्राप्त करना ईश्वर इच्छा पर निर्भर करता है। ईश्वर को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारक माना गया है। इस रूप में न्याय -वैशेषिक दर्शन में 'धर्म का स्वरूप' स्पष्ट किया जाता है।

संदर्भ सूची:

1. पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 83
2. सिन्हा, हरेंद्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पृष्ठ 198
3. भट्ट, जयंत, न्याय-मंजरी, पृष्ठ 432
4. चटर्जी, सतीशचंद्र, दत्ता, धीरेंद्र मोहन, भारतीय दर्शन, पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस पटना, पृष्ठ 213
5. सिन्हा, हरेंद्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पृष्ठ 198
6. वात्सायन, न्यायभाष्य 1/1/9
7. पंचानन, विश्वनाथ, न्यायसिद्धांत मुक्तावली।

8. चटर्जी, सतीशचंद्र, दत्ता, धीरेंद्र मोहन, भारतीय दर्शन, पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस पटना, पृष्ठ 214
9. षडदर्शन समुच्चय, अभ्यास 1; कुसुमांजलि, 5
10. सिंह, बद्रीनाथ, भारतीय दर्शन, आशा प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ 285
11. भगवद्गीता (नवम अध्याय, 17-18)
12. उदयन, न्याय कुसुमांजलि, 5, 1 (संदर्भित- भारतीय दर्शन- चंद्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पृष्ठ 190)
13. शर्मा, चंद्रधर, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पृष्ठ 170
14. पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 102